P: ISSN NO.: 2394-0344
E: ISSN NO.: 2455-0817

Remarking
Vol-II * Issue-VI* November - 2015

भारतीय संविधान में अनुच्छेद 19 में स्वतंत्रता का अधिकार और शासकीय सीमाएँ

ललिता दादरवाल
व्याख्याता,
राजनीति विज्ञान विभाग,
सुबोध महिला महाविद्यालय,
जयपुर

सारांश

समाज में पूर्ण स्वतंत्रता संभव नहीं है क्योंकि पूर्ण स्वतंत्रता का अर्थ होगा दूसरे लोगों के हितों की उपेक्षा। इसलिए स्वतंत्रता के अधिकार पर कुछ प्रतिबन्ध आव"यक हो जाता है जैसे घूमने की स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं हो सकता कि हम किसी की सम्पत्ति या घर में भी मालिक की अनुमति के बिना घुस जाये। वाक् स्वतंत्रता का भी यह अर्थ भी नहीं हो सकता कि हम किसी को गाली दें या किसी की मान हानि करें। यही कारण है कि अमरीकी संविधान के प्रथम स"ोधन में वाक् स्वतंत्रता एवं धर्म स्वतंत्रता आदि के अधिकार अ"ार्त होते हुए भी वहाँ के न्यायालय ने पुलिस शक्ति के सिद्धांत का सहारा लेकर राज्य द्वारा जनहित में इन अधिकारों पर लगाये गये निर्बन्धन संवैधानिक घोषित किये जाये।

किसी व्यक्ति के अधिकार के उपयोग पर निर्बन्धन मनमाना या लोकहित में आव"यकता से अधिक नहीं होना चाहिए। जब तक कोई विधि अनुच्छेद 19 के खड(1) के विभिन्न उपखण्डों में दिये गये अधिकारों और (2) से (6) खण्डों द्वारा अनुज्ञात सामाजिक नियंत्रण का संतुलन नहीं करती, उसमें युक्ति–युक्तता की कमी समझना चाहिए। जैसे वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर यदि कोई निर्बन्धन अनुच्छेद 19 के खण्ड (2) में दिये गये आधारों पर नहीं है तो विधि असंवैधानिक मानी जाएगी। चाहे निर्बन्धन कितना भी युक्ति–यक्त हो। खाद्य पदार्थ, कॉस्मेटिक्स या औषधियों के बारे में उपभोक्ता को यह जानकारी का अधिकार है कि वह सामिष है या निरामिष है। ऐसी जानकारी न देने से उसके अनुच्छेद 19(1)(क), 21 और 25 में दिये गये मूल अधिकारों का अतिलंघन होता है। इसलिए जीवन रक्षक औषधियों को छोड़कर प्रत्येक पैकिंग पर इस प्रकार की जानकारी के लिए कोई व्यवस्था होनी चाहिए। ''पिपुल्स फोर सिविल लिबर्टीज बनाम् भारत संघ'' मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जानकारी प्राप्त करने का अधिकार वाक् स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति स्वतंत्रता के अधिकार का ही एक पहलू है। परन्तु दे"ा की सुरक्षा के हित में इस पर युक्ति–युक्त निर्बन्धन लगाया जा सकता है। इस केस में अपीलार्थी ने ऐटोमिक एनर्जी रेग्यूलेटरी बोर्ड की रिपोर्ट के आधार पर परमाणविक प्रतिष्ठानों में सुरक्षा की कमियों की जानकारी प्राप्त करनी चाही थी परन्तु न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि बोर्ड की रिपोर्ट संवेदन"ाील प्रकृति के मामले से सम्बन्धित है और उसको प्रकट करने का आदे"ा नहीं दिया। नीलम महाजन सिंह बनाम कमि"नर ऑफ पुलिस के मामले में न्यायालय ने कहा कि भ्रष्ट करने की प्रवृति की संकल्पना शोक और घृणा उत्पन्न करने की प्रवृति से अधिक कड़े शब्द हैं और उनसे नैतिक पतन उपलक्षित होता है। प्रत्येक व्यक्ति की ख्याति की सुरक्षा के अधिकार का भी महत्व है। अतः मानहानि कारक भाषण से शांति व्यवस्था को खतरा हो सकने के कारण संविधान इस प्रकार के भाषण पर निर्बन्धन लगाने का प्राधिकार राज्य को देता है।

किसी भी व्यक्ति को वाक् तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रयोग करते समय मूल कर्तव्यों का ध्यान रखना आव"यक है। मूल कर्तव्यों में संविधान का पालन, इसके आद"ार्ों, संस्थाओं, दे"ा की प्रभुता, एकता और अखण्डता को सुरक्षित रखना, लागों में समरसता और भ्रातृत्व की भावना का विकास करना, संस्कृति व परम्परा का संरक्षण और वैज्ञानिक दृष्टिकोण व मानववाद की भावना का विकास, बालकों को ि"ाक्षा उपलब्ध कराना आदि।[1]

मुख्य शब्द : कार्यपालिका, निर्बन्धन, पूर्वानुमानित निर्बन्धन, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, लोक सुरक्षा, लोक व्यवस्था, प्राधिकार, प्रभुता, अखण्डता, सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता, सुरक्षा, शांति, युक्तियुक्त, संवैधानिकता, असंवैधानिक।

प्रस्तावना

अनुच्छेद 19 द्वारा दी गई स्वतंत्रता पर निर्बन्धन की युक्ति–युक्तता नि"चित करते समय निर्बन्धन करने के तरीके, कार्यपालिका द्वारा अपनाई गई

प्रक्रिया, निर्बन्धन की अवधि तथा सीमा और परिस्थितियों पर विचार किया जाना चाहिए। युक्ति–युक्तता की कोई सर्वमान्य परख संभव नहीं है जिसके आधार पर प्रत्येक निर्बन्धन की जांच की जा सके। प्रत्येक केस की जांच उससे सम्बंधित परिस्थितियों को ध्यान में रखकर करनी चाहिए। न्यायमूर्ति पतंजलि शास्त्री ने राज्य बनाम वी. जी. राव में कहा था कि जिस अधिकार का उल्लंघन हुआ हो उसकी प्रकृति, निर्बन्धन का कारण, जिस बुराई को दूर करने के लिए निर्बन्धन लगाया गया हो उसकी सीमा आदि पहलुओं पर विचार करना होगा। युक्ति–युक्तता की परख यह नहीं है कि कोई जज व्यक्तिगत रूप से निर्बन्धन को युक्ति–युक्त समझता है या नहीं। दूसरे शब्दों में युक्ति–युक्तता वस्तुनिष्ठ है आत्मनिष्ठ नहीं। युक्ति–युक्तता नि"चित करते समय जज को बहुत सो बातों पर विचार करना होता है। इसके साथ ही सारभूत विधि एवं प्रक्रिया दोनों ही यदि कोई निर्बन्धन करती है तो वे तभी उनुच्छेद 19 के अनुकूल होंगी।[2]

निर्बन्धन के सम्बन्ध में राज्य को भूतलक्षी विधि बनाने की शक्ति प्राप्त है इसलिए राज्य कोई भी निर्बन्धन पिछलो तारीखों से लागू कर सकता है यद्यपि सामान्यतः विधि बनने की तिथि के बाद से प्रभावी होनी चाहिए। किसी निर्बन्धन की युक्ति–युक्तता पर विचार करते समय उसका भूतलक्षी प्रभाव एक ऐसा तत्व है जिस पर विचार करना होगा परन्तु भूतलक्षी प्रवर्तन युक्ति–युक्तता का पता लगाने के लिए कोई नि"चयी परख नहीं हो सकता। कभी–कभी आपात स्थिति में सुरक्षा तथा सार्वजनिक व्यवस्था को खतरा होने की संभावना हो सकती है। ऐसी स्थिति में राज्य वास्तविक संकट आने के पहले ही निर्बन्धन लगा सकता है जिन्हें पूर्वानुमानित (Anticipatory) निर्बन्धन कहा जाता है।[3]

सरकार अग्रलिखित मामलों में जानकारी देने से मना कर सकती है– अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, राष्ट्रीय सुरक्षा जिसमें प्रतिरक्षा भी है, सरकार का आंतरिक वार्तालाप, आपराधिक जांच, निरोध और अपराध निवारण, बाहरी स्त्रोत से प्राप्त जानकारी, ऐसी जानकारी जिसे प्रकट करने से एकांतता के अधिकार का अतिक्रमण होता हो, आर्थिक प्रकृति की जानकारी जिसको प्रकट करने से किसी व्यक्ति या सरकार को अनुचित हानि होती हो, विधि व्यवसायी और कारीगर के बीच सूचनाएं तथा अन्य ऐसी सूचनाएं तथा अन्य ऐसी वि"ोषाधिकत सूचनाएं तथा वैज्ञानिक खाजों के बारे में जानकारी आदि।[4]

लोक व्यवस्था लोक शांति और लोक सुरक्षा शब्दों का एक ही अर्थ है। कोई निर्बन्धन लोक व्यवस्था के हित में तभी कहा जा सकता है जब लोक व्यवस्था और निर्बन्धन में अवास्तविक सम्बन्ध हो तो निर्बन्धन लोक व्यवस्था के हित में नहीं कहा जा सकता। ''ओ. के. घोष बनाम ई. एक्स. जोसफ'' में सरकार ने यह नियम बनाया था कि किसी संघ की मान्यता समाप्त कर दी जाए या वह मान्यता प्राप्त करने में असफल हो जाए तो छः माह के अन्दर सरकारी नौकरों को उससे सदस्यता वापस कर लेनी चाहिए। इस पर उच्चतम न्यायालय न निर्णय दिया कि निर्बन्धन और लोक व्यवस्था में प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं था इसलिए निर्बन्धन असंवैधानिक घोषित कर दिया गया।

संगम या संघ बनाने के मूल अधिकार पर अनुच्छेद 19(4) के अनुसार भारत की प्रभुता एवं अखण्डता, सार्वजनिक व्यवस्था तथा नैतिकता के आधार पर हो निर्बन्धन लगाये जा सकते हैं। लेकिन निर्बन्धन तभी संवैधानिक हो सकते हैं जब युक्तियुक्त हो। संविधान के अनुच्छेद 33 में प्रावधान है कि संसद विधि द्वारा निर्धारण कर सकेगी कि संविधान के भाग 3 द्वारा दिये गये मूल अधिकारों में से किसी को स"ास्त्र बलों अथवा एसे बलों जिन पर सार्वजनिक व्यवस्था का भार है, के सदस्यों के लिए प्रयोग होने की अवस्था में किस मात्रा तक निर्बन्धित किया जाये ताकि उनमें अनु"ाासन बना रहे।[5]

''ओ. के. ए. नायर बनाम भारत संघ में एक प्र"न था कि क्या सेना के ऐसे कर्मचारियों, जैसे नाई, दर्जी, रसोईया, मोची आदि जिनका काम लड़ाई लड़ना नहीं है, द्वारा संघ बनाने पर संसद रोक लगा सकती है। इस सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यद्यपि ये लाग लड़ने वालों में से नहीं है ओर किसी हद तक सिविल सेवा के नियमों से शासित होते हैं फिर भी सेना के अभिन्न अंग होते हैं और संसद को इनके संघ बनाने के अधिकार पर निर्बन्धन लगाने की शक्ति अनुच्छेद 33 के अन्तर्गत है। संघ बनाने की स्वतंत्रता का अर्थ यह है कि कोई व्यक्ति चाहे तो संघ बना सकता है या किसी संघ का सदस्य बन सकता है। इस स्वतंत्रता का एक पहलू यह भो है कि वह इस बात के लिए भी स्वतंत्र है कि चाहे तो किसी संघ का सदस्य न बने।[6]

इसी प्रकार कोई नियम जो नियोजक द्वारा दिये गये आदे"ाों के अनुरूप न गठित किये गये संघ की सदस्यता ग्रहण करने पर प्रतिबन्ध लगाता हो वह भी अयुक्ति–युक्त निर्बन्धन होगा। इसके विपरीत जहाँ सरकार किसी वि"ोष संघ का सदस्य बनना अनिवार्य करती है अयुक्तियुक्त निर्बन्ध नही माना जाएगा। परन्तु जहाँ संगम ऐसा कोई व्यापार करता है जिस पर लोक हित में सरकार नियंत्रण कर सकती है ओर उस संगम की मान्यता उस व्यापार के करने के लिए आव"यक है वहाँ उसकी सदस्यता शर्तें विहित की जा सकती है।[7]

सामान्य जनता के हित में : इसमें लोक व्यवस्था, सुरक्षा, शांति, नैतिकता आदि सभी बातें आती हैं। सामान्य जनता के हित में संचरण निवास एवं बसने के अधिकारों पर कई प्रकार से निर्बन्धन लगाये जा सकते हैं–

''डॉ. एन. बी. खरे बनाम दिल्ली राज्य'' में पूर्वी पंजाब सार्वजनिक सुरक्षा अधिनियम 1949 की धारा 4(1)(ग) के अन्तर्गत जिला मजिस्ट्रेट ने यह आदे"ा पारित किया था की अर्जीदार 3 वर्ष के लिए दिल्ली राज्य से बाहर चला जाये। उच्चतम न्यायालय ने इस निर्बन्धन को भी युक्तियुक्त और संवैधानिक घोषित किया।

भारत से बाहर निकालना

''इब्राहीम वजीर बनाम मुम्बई राज्य'' में पाकिस्तान से आगमन अधिनियम 1949 की धारा–7 की संवैधानिकता को चुनौती दी गई थी। धारा–7 में केन्द्रीय सरकार को यह प्राधिकार दिया गया था कि वह किसी व्यक्ति को भारत राज्य क्षेत्र के बाहर निकाल द। यदि उस व्यक्ति ने इस अधिनियम के अन्तर्गत कोई अपराध किया हो या ऐसा अपराध करने का उस पर संदेह हो।

उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय किया कि धारा–7 अनुच्छेद 19(1)(ड़) के विरूद्ध होने के कारण असंवैधानिक है।

अनुज्ञा द्वारा नियंत्रित प्रवेश

अनुच्छेद 19 के खण्ड (5) के अन्तर्गत किसी सार्वजनिक स्थान पर प्रवे"ा के लिए पास आदि की शर्त संवैधानिक होगी यदि वह युक्ति–युक्त और सामान्य जनता के हित में हैं। दे"ा में प्रवे"ा के लिए भी पासपोर्ट की शर्त लगाई जा सकती है। पासपोर्ट नियमों के नियम 3 यह प्रतिबंध लगाता है कि कोई व्यक्ति भारतीय राज्य क्षेत्र में बिना विधि मान्य पासपोर्ट के प्रवे"ा नहीं करेगा। अब्दुल रहीम बनाम मुम्बई राज्य के मामले में उच्चतम न्यायालय ने इस नियम को संवैधानिक घोषित किया।

पुलिस निगरानी

बहुत से मामलों में अभ्यासिक अपराधियों पर पुलिस की निगरानी को संवैधानिक तथा सामान्य जनता के हितों में युक्ति–युक्त निर्बन्धन घोषित किया गया। गोविन्द बनाम मध्य प्रदे"ा में मध्य प्रदे"ा पुलिस नियमों में पुलिस निगरानी व्यवस्था थी जो पुलिस अधिनियम की धारा 40 (5) (ग) के अन्तर्गत बनाये गये थे। उच्चतम न्यायालय द्वारा इन्हें संवैधानिक घाषित किया गया। परन्तु ''खड़क सिंह बनाम उत्तर प्रदे"ा'' मामले में पुलिस की निगरानी व्यवस्था को असंवैधानिक घोषित कर दिया गया क्योंकि अनुच्छेद 19 के अन्तर्गत निर्बन्धन कानून द्वारा लगा होना चाहिए जबकि यू.पी. पुलिस नियम, जिनमें निगरानी की व्यवस्था थी किसी अधिनियम के अन्तर्गत नहीं बने थे।[8]

''बाल कोटैया बनाम भारत संघ'' में रेलवे सेवा नियमों किसी भी सेवक की कभी भी प्रसादानुसार सेवा समाप्त करने का प्रावधान था। अपीलार्थी की सेवाएं समाप्ति के आदे"ाों को इस आधार पर चुनौती दी थी कि सेवाएं इसलिए समाप्त की गई वे कम्युनिष्ट थे और व्यवसाय संघ सक्रिय भाग लेते थे। इसलिए सेवा समाप्ति आदे"ा अनुच्छेद 19(1) (ग) द्वारा प्रदत्त समागम और संघ बनाने का अधिकार का अतिक्रमण करते थे और असंवैधानिक थे। इस पर उच्चतम न्यायालय ने निर्णय किया कि अनुच्छेद 19(1) (ग) का अतिक्रमण नहीं हआ क्योंकि अपीलार्थी को किसी प्रकार का संघ बनाने या उसमें सदस्य होने के लिए आदे"ाों में मना नहीं किया गया था। परन्तु रेलवे सेवा में बने रहना उसका म्ल अधिकार नहीं है। सरकारी सेवा से सम्बन्धित सुरक्षा के लिए प्रावधान अनुच्छेद 311 में हैं। अतः अपीलार्थीगण अनुच्छेद 311 के द्वारा दी गई सुरक्षा ही प्राप्त कर सकते हैं।[9]

कोई निर्बन्धन युक्ति

युक्त है या नहीं इसको परखने के लिए हमें उसके तत्व और उसके लगाने की प्रक्रिया दोनों पर विचार करना चाहिए।

''जी.के. कृष्णन बनाम तमिलनाडु राज्य'' में उच्चतम न्यायालय ने दोनों शब्दों में अन्तर स्पष्ट करते हुए यह मत व्यक्त किया कि विनियमन यातायात के नियमों की तरह व्यापार तथा कारोबार की स्वतंत्रता को सुविधाजनक बनाता है जबकि निर्बन्धन उस स्वतंत्रता में बाधक होता है। इस केस में यह निर्णय किया गया था कि सड़कों, पुलों आदि के प्रयोग के बदले कर निर्बन्धन नहीं, विनियमन है।[10]

''सगीर अहमद बनाम उत्तर प्रदे"ा राज्य'' में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि सामान्यतया निर्बन्धन का अर्थ अधिकार सीमित करना होता ह न कि उसको समाप्त करना। ''कुंवरजी बनाम एक्साइज कमि"नर'' में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय किया कि उपमिश्रित खाद्य सामग्री में व्यापार करने का कोई मूल अधिकार नहीं है। इसका प्रतिशोध राज्य कर सकता है।

''नरेन्द्र कुमार बनाम भारत संघ'' मामले में आयात की गई कॉफी में व्यापार का प्रतिषेध के आदे"ा को संवैधानिकता को चुनौती दी गई। उच्चतम न्यायालय ने सार्वजनिक हित में उस प्रतिषेध को उचित बताया।[11]

फीस और कर लगाने की शक्ति संघ और राज्य सरकारों को सप्तम सूची में दी गई है। इसलिए कर लगाने से अनुच्छेद 19(1) (छ) का उल्लंघन नहीं होता। कर को पिछली तारोखों से भी लगाया जा सकता है। मात्रा कुछ अधिक होने के कारण भी असंवैधानिक नहीं हो सकती। फिर भी लाईसेंस फीस और कर में काफी अन्तर है क्योंकि लाईसेंस दिये बिना कारोबार किया ही नहीं जा सकता। यदि किसी नौकरी या कारोबार के लिए राज्य कानून द्वारा कोई वृतिक या तकनीकी अर्हताएं विहित करता है तो वे अनुच्छेद के खण्ड (6) (1) के अन्तर्गत संवैधानिक होगी।

प्रथम संविधान स"ोधन अधिनियम 1951 के द्वारा अनुच्छेद 19 (6) (2) में स"ोधन कर राज्य को प्राधिकार दिया गया कि राज्य या उसके स्वामित्व या नियंत्रण के किसी निगम द्वारा कोई व्यापार, कारोबार, उद्योग या सेवा नागरिकों का पूर्णतया या आं"ाक उपवर्जन करके चलाया जा सकता है। यह स"ोधन इलाहाबाद उच्च न्यायालय के ''मोतीलाल बनाम उत्तर प्रदे"ा'' मामले में निर्णय के फलस्वरूप किया गया। इस केस में यातायात पर राज्य का एकाधिकार असंवैधानिक घोषित कर दिया गया था। ''सबूत का भार–सगीर अहमद बनाम उत्तर प्रदे"ा राज्य'' में उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि निःसंदेह विधायन की संवैधानिकता के पक्ष में उपधारणा होती है परन्तु जब प्रथम दृष्टया कोई विधायन अनुच्छेद 19 (1) (छ) के अन्तर्गत प्रत्याभूत मूल अधिकार का अतिक्रमण करता है तो उसे अविधिमान्य अभिनिर्धारित करना चाहिए जब तक कि जो उस विधायन के पक्ष में हैं उसे खण्ड (6) में उल्लिखित अपवाद के अन्तर्गत नहीं ला सकता। इस प्रकार यह साबित करने का भार राज्य पर होता है कि मूल मूल अधिकारों पर लगाये गये निर्बन्धन युक्तियुक्त है और सम्बन्धित खण्ड में उल्लिखित आधारों पर लगाये गये हैं। अनुच्छेद 19(1) (छ) द्वारा प्रत्याभूत अधिकार पर अनुच्छेद 19 के खण्ड (6) के अनुसार साधारण जनता के हित में युक्ति–युक्त निर्बन्धन लगाये जा सकते हैं।[12]

निष्कर्ष

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का जब सरे आम हनन लगे तो क्या सरकारों का फर्ज नहीं बनता कि इस तरफ वि"ोष ध्यान दिया जाये। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता संविधान में जुड़ा कोई पन्ना नहीं है बल्कि लोगों को अहसास दिलाने का माध्यम भी है कि लोकतंत्र में सब को अपनी बात रखने का अधिकार है। दे"ा के

अलग–अलग हिस्सों में आये दिन होने वाली वारदातें यह सोचने को जरूर मजबूर कर देती है कि क्या अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की कीमत मौत भी हो सकती है। कर्नाटक में कन्नड़ लेखक और विद्वान एम.एम. कलबुर्गी की हत्या जांच ठण्डी भी नहीं पड़ पाई थी एक दूसरे लेखक और विचारक के. एस. भगवान को भी धमकी भरा पत्र मिला। कलबुर्गी की हत्या के बाद भगवान को धमकी मिलना यह द"ार्ाता है कि आजादी के 68 सालों बाद भी कुछ लोग दूसरों की बात सुनने को तैयार नहीं हैं। लोकतंत्र के मायने सिर्फ मतदान करने को ही नहीं माना जा सकता। इसका अर्थ बहुत व्यापक है और सबकी आजादी के साथ जुड़ा है। कन्नड़ साहित्यकार कलबुर्गी का दोष सिर्फ इतना था कि वे अंधवि"वास और धार्मिक कट्टरवाद के विरोध में कलम चलाते थे। दे"ा में तरह–तरह की विचारधाराएं हैं ओर सबको आजादी है कि वे अपने तरीके से इन विचारधाराओं का समर्थन अथवा विरोध करे। विरोध करने का तरीका शालीन और लोकतंत्र के दायरे में रहे। इसका ध्यान प्रत्येक नागरिक को अव"य रखना होगा। अंधवि"वास और धार्मिक कट्टरवाद के विरोध में यदि कुछ भी लिखा गया तो इसको सजा देने का काम अदालत का है न कि किसी व्यक्ति या समाज का। पिछले सालों में दे"ा में अनेक पत्रकारों, लेखकों आरटीआई कार्यकर्ताओं की हत्या सिर्फ इसलिए कर दी गई क्योंकि वे पर्दे के पीछे की सच्चाई दे"ा के सामने लाना चाहते थे। अफसोस की बात यह है कि ऐसे लोगों को मौत के घाट उतारने वाले तमाम लोग आज भी कानून के f"ाकंजे से आजाद है। कर्नाटक में पिछले एक द"ाक से धार्मिक कट्टरवाद की बढ़ती घटानाएं चिंताजनक है। वोटों की राजनीति के लिए कुछ संगठन ऐसी वारदातों को हवा दे रहे हैं। कर्नाटक सरकार ही नहीं दे"ा की तमाम सरकारों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के पक्ष में खड़े लोगों को सुरक्षा देनी चाहिए ताकि ऐसे लोग अपनी आवाज बुलंदी से उठा सकें ओर दूसरे लोगों को भी प्रेरित कर सकें। वे सच का साथ देने के लिए आगे आये। लोकतंत्र की आवाज दबाने वाले लोगों को सख्त सजा दिलाने के लिए भी सरकारों को अपनी जिममेदारी का निर्वहन बखूबी करना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ए. आई. आर. 1960, सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली, पृ. 20
2. ए. आई. आर. 1963, सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली, पृ. 812
3. ए. आई. आर. 1973, सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली, पृ. 87
4. ए. आई. आर. 1969, सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली, पृ. 966
5. ए. आई. आर. 1166, 'कामे"वर बनाम बिहार राज्य' सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली, 1962 तथा हिम्मतलाल बनाम पुलिस कमि"नर, 87 (94), 1973
6. ए. आई. आर. 1976, सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली, पृ. 1179
7. मधु भाई बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 1961, एस. सी. 21, रघुवर बनाम भारत संघ ए. आई. आर. 1962, एस.सी. 262
8. ए. आई. आर. 416, सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली, 1964
9. ए. आई. आर. 232, सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली, 1958
10. ए. आई. आर., सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली, 1975, पृ. 583
11. ए. आई. आर., सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली, 1964, पृ. 1135
12. लक्ष्मी खण्डसारी बनाम उत्तर प्रदे"ा राज्य, ए.आई.आर, 1981, एससी., पृ. 873,